Review Of Research
ISSN 2249-894X
Impact Factor : 3.1402(UIF)
Volume - 5 | Issue - 1 | Oct - 2015

दलित साहित्य : एक मौलिक स्त्रोत

डॉ.राजाराम कानडे
हिंदी विभागाध्यक्ष, एस.एस.जी.एम.कॉलेज, कोपरगांव, जि.अहमदनगर (महाराष्ट्र).

प्रस्तावना—

दलित साहित्य अंबेडकरी चेतना में प्रस्फुटित, दलित क्रांतिकारी साहित्यकारों की प्रखरता में अभिव्यक्त जातिव्यवस्था के प्रति नकार, विद्रोह है और भारतीय समाजव्यवस्था परिवर्तन की चाहत में शिक्षा—संगठन—संघर्ष, विज्ञाननिष्ठा, बुद्धिप्रामाण्यवाद तथा मानवता के स्वीकार की पुकार है। दलित साहित्य अंबेडकरी चेतना की नींव में पल्लवित एक ऐसा प्रकाश पुंज है जो अंधेरे में उतरा है और समस्त जन को वैज्ञानिक दृष्टि की अहमीयता को समझाने में मानवतावाद प्रस्तुत कर रहा है। अत: 'दलित साहित्य' काफी चर्चित रहा है। दलित साहित्य विमर्श हेतु उसकी परिभाषा एवं उसके स्वरूप के प्रति चिंतन होना अनिवार्य प्रतीत होता है।

दलित साहित्य की परिभाषा एवं स्वरूप—

युगों के शोषण से उपजी साहित्यिक क्रांति को अनेक विद्वानों ने विभिन्न राय में प्रस्तुत किया हैं। इनमें से महत्वपूर्ण विद्वानों की राय पर गौर करने हेतु निम्नांकित परिभाषाएँ प्रस्तुत हैं—दलित साहित्य के विख्यात समीक्षक डॉ.भालचंद्र फडके ने दलित साहित्य के प्रति यह कहा है,''दलित साहित्य प्रतिशोध लेनेवालों का साहित्य नहीं है। वह तो मानवता के लिए संघर्षरत व्यक्तियों का साहित्य है। 'हम दलित है' यह निडरता से स्वीकारने वालों का यह साहित्य है। दलित साहित्य इसी देश की मिट्टी से पल्लवित है।''[१]

'जीओ और जीने दो' की नींव पर मानवतावाद खडा है। इसकी पुकार में मानव अस्मिता निहित है जिसमें किसी तरह का प्रतिशोध नहीं है और ना ही हिंसा का भाव है बल्कि 'अत्त दीप भव' का स्वीकार है। हम ही हमारे निर्देशक, सूरज है। अत: अंदरूनि शक्ति, उजाला या उर्जा विकसित करने हेतु संघर्षरत मानवी समूह है जिसने आधुनिक काल में स्वयं को दलित कहकर संगठन का नारा दिया है। साहित्यकारों की उस नयी पुकार में अंबेडकरी चेतना एक प्रखर स्रोत के रूप में उभरी है।

प्रा.केशव मेश्राम ने यह कहा है,''हजारों साल जिनपर अन्याय हुए ऐसे अस्पृश्यों को दलित कहना चाहिए और उसी वर्ग के लेखकों द्वारा लिखे गए साहित्य को दलित साहित्य कहा जाए।''[२] अर्थात् 'फोडो पीटो तथा राज करो'। इस राजनीतिक का आश्रय ना केवल अंग्रेजों ने लिया बल्कि अंग्रेजों के पहले जातिअभिमानियों ने लिया है। सीढीनुमा समाज का पर्दाफाश करने वाली अंबेडकरी चेतना ही दलित साहित्य है जो दलितों द्वारा लिखा जाना चाहिए। यह उसकी प्रमुख पहचान है। क्योंकि दलितों की स्वानुभूति की तुलना किसी के साथ नहीं की जा सकती। लोहे का स्वाद घोडा ही जानता है। इस चेतना ने दलितों में स्वत्व जगाया है।

ओमप्रकाश वाल्मीकी ने दलित साहित्य के बारे में कहा है,''दलित साहित्य किसी आनंद का मोक्ष की प्राप्ति के लिए नहीं बल्कि आदमी को आदमी की तरह जीवित रखने के लिए उसकी अपनी निजता

को स्थापित करने के लिए अस्तित्व में आया है।''[३] अर्थात् दलित साहित्य का मकसद मनोरंजन आनंद तथा मोक्ष प्राप्ति नहीं है बल्कि जातिअभिमानी मानसिकता से मुक्ति या दूर रहने की कामना तथा नसिहत में लिखा जा रहा है। इस संबंध में ओमप्रकाश वाल्मीकि का यह कथन महत्वपूर्ण है जैसे—''दलित' ईश्वर, आत्मा, परमात्मा पुनर्जन्म में विश्वास नहीं करता हैं। इनसे मुक्त होना आज की आवश्यकता है जब समाज में समता, बंधुता और स्वातंत्र्य की भावना स्थापित नहीं होगी तब तक समाज और देश का विकास अवरूद्ध रहेगा। दलित साहित्य ने इस विचारधारा को ही अपना मौलिक सिद्धान्त बनाया है।''[४]

उपर्युक्त परिभाषाओं तथा विश्लेषण से यह कहता बनता है कि दलित साहित्य वस्तुत: अंबेडकरी चेतना का दूसरा नाम है जो दलित क्रांतिकारी साहित्यकारों की स्वानुभूति से उभरा है और भारतीय समाज व्यवस्था परिवर्तन की चाहत में विकसित हुआ है। इस बहुचर्चित साहित्य के स्वरूप को निम्नांकित मुद्दों के जरिए समझा जा सकता हैं जिसमें दलित साहित्य की मौलिकता नजर आएगी।

१. अनुभूति की प्रामाणिकता—

दलित साहित्य दलितों के अधिकार की पहचान करने हेतु लिखा गया है। व्यक्ति को जब स्वयं की पहचान होने लगती है तब वह संघर्ष की उचित चेतना प्राप्त करता है अर्थात् यह साहित्य दलित वर्ग को अपने में झॉकने की प्रेरणा देता है। दलितों का यह प्रयास सबसे पहले काव्य के माध्यम से व्यक्त हुआ है जिसमें अनुभूति की प्रामाणिकता देखी जाती है। आजकल यह चेतना आत्मकथाओं में,नाटक कहानियों में भी प्रकट हो रही हैं। यह साहित्य एक ओर दलितों की दुरावस्था का दस्तावेज है तो दूसरी ओर गैर दलितों का अहंकार, मौकापरस्त परिवेश का बखान और यथायोग्य राष्ट्र विकास की चेतना प्रस्तुत करता है। दलितों की अभिव्यक्ति में प्रामाणिकता की झॉकियॉ स्पष्ट हुई हैं। जैसे—शंकरराव खरात के ये मंतव्य द्रष्टव्य है,''मॉ शुक्र तथा मंगल के दिन स्नान करके कभी कबार देव पूजा करती थी। मेरे पिताजी का देव से कोई संबंध नहीं था । रात—दिन अथक मेहनत करने वाले मेरे पिताजी को इन देवों ने कभी सहयोग नहीं दिया। मुझे उनकी गृहस्थी में सुहावनें पल न दिखे। बेकाम के लोगों को देव—धर्म सूझता है परंतु पेट निर्वाह के खातिर बारह घंटे कार्यरत मनुष्य को कैसे देव—धर्म का याद रहेगा।''[५] इसतरह की प्रामाणिकता दलित साहित्य में अभिव्यक्त है जो सत्यम्—शिवम् सुंदरम की नयी व्याख्या देने में सक्षम है। अनुभवों की प्रामाणिकता ही दलित साहित्य की नींव है।

२. भारतीय समाज का यथार्थ—

दलित साहित्य अस्पृश्य जनों की पीडा का दस्तावेज है। आधुनिक दलित भूतकाल में छितरे, अछूत, अस्पृश्य थे जो न अच्छे कपडे पहन सकते थे और ना ही आभूषण। वे अपने बच्चों के नाम भी स्वयं घोषित नहीं कर सके। वे सवर्णों के सामने कुर्सी पर बैठने का साहस नहीं करते थे। दलितों का आत्मविश्वास नष्ट करके उनमें दलितत्व रगो में संचारित करने की खबरदारी जातिअभिमानियों ने ली है अर्थात् भारतीय समाज ने दलित के लिए वे तमाम रास्ते बंद किए जहॉ वह अपनी मौलिकता का प्रदर्शन कर सके तथा मौलिक अधिकार प्राप्त कर सके। यही कारण है कि सजग लेखक ओमप्रकाश वाल्मीकि ने समाज को कई सवाल किए हैं—जैसे—''यदि तुम्हें नदी के तेज बहाव में उल्टा बहना पडे। दर्द का दरवाजा खोलकर भूख से जूडना पडे/ भेजना पडे नयी—नवेली दुल्हन को/पहली रात ठाकूर की हवेली/तब तुम क्या करोगे?''[६] भारतीय विषम समाज रचना तथा उसकी जातिव्यवस्था ने स्वतंत्रता, समता, बंधुता जैसे कई संविधानिक मूल्यों को कुचला है, क्या यह सही है ? इस सवाल में दलितों की वेदना, स्वत्व की पहचान में यथार्थ व्यक्त हुआ है जो पाठक को सजग करता है।

३. अस्मिता के लिए संघर्ष—

दलित साहित्यकारों ने डॉ.बी.आर.अंबेडकर के व्यक्तित्व तथा कृतित्व से प्रभावित होकर अंबेडकरी विचार को जनमानस तक पहुॅचने का जो प्रयास किया है वह अनुपम तथा सुंदर है। अत: दलितों में अस्मिता जगी और दलित स्वयं को ये प्रश्न कर रहे हैं कि हम कौन हैं? किसलिए और क्यों जिंदा हैं? हमारा शोषण कौन कर रहा है और कैसे? आदि सवालों में दलितों की परेशानियॉ हैं। इसी सोच में दलित साहित्य लिखा जा रहा है जिसमें भुक्तिभोग; अनुभूति की प्रखरता है। डॉ.बी.आर.अंबेडकर ने काशी हिंदू विश्वविद्यालय के कुलपति मदनमोहन मालवीय के सामने यह सवाल किया था। ''मैं आज भी अस्पृश्य

हूॅ। हालॉकि पढा–लिखा हूॅ । मेरी शिक्षा मुझे दलित से बाहर नहीं निकाल सकीं ।''[७] इसतरह डॉ.बी.आर. अंबेडकर ने भारतीय समाज में व्याप्त जातिभेद को पिरॅमिड की तरह माना है जिसमें बाहर जाने का कोई विकल्प नहीं है। अर्थात् दलितों की मानसिक कमजोरियॉ का केवल तमाशा हो गया है। चमार का बेटा प्रोफेसर होने के बावजूद गाववालों के लिए वह केवल चमार का बेटा ही है क्योंकि दलित को इज्जत देना उन्हें स्वीकार्य नहीं । दूसरी तरफ चतुर्वेदी ने वेद देखे न होने पर भी वह समाज की दृष्टि से चतुर्वेदी ही है। इसलिए उॅचे कुल, जाति में जन्मा श्रेष्ठता का हकदार हो जाता है। दलितों ने अब जाना है कि वर्णव्यवस्था दलितों के लिए एक साजिश है। ''वर्णव्यवस्था दलितों के लिए एक मानसिक रोग से कम नहीं है और इस रोग के कारण दलित हीन भावना में विचरण करता है और उसका मानसिक, सामाजिक व बौद्धिक विकास हमेशा त्रुटिपूर्ण रहता है।''[८] पीडा, दर्द पूरी तरह दूर नहीं हो पाया है। भारतवर्ष के कई देहातों में जातिअभिमानियों से दलित पीडित हैं । अत: दलित मूलत: क्षत्रिय होकर भी दलितत्व के बोझ में तडप रहे हैं, यही कारण है कि उनके काव्य में व्यक्त नकार की अभिव्यक्ति एक मौलिकता है।

४. आंदोलन से उभरा साहित्य–

दलित साहित्य अंबेडकरी आंदोलनों से उभरा है। दलित आंदोलन की चिंगारी महाराष्ट्र की भूमि में सुलगी है जो आज समष्टि में व्यापक हो रही है। स्वातंत्र्य, समता, न्याय तथा बंधुता के प्रमुख मूल्यों को लेकर यह आंदोलन चल पडा। इसी आंदोलन के समर्थन में साहित्यिकों ने अपनी प्रतिभा विकसित की। शुरू में दलित साहित्यकारों के लेखन को सवर्ण प्रकाशकों द्वारा नकारा गया था । दलित लेखकों के साहित्य संमेलन में इसी उलझन को सुलझाने का प्रयास हो गया; तभी से दलित साहित्य को उचित स्थान या महत्व दिया जाने लगा। २ मार्च १९५८ ई.से इस साहित्य के प्रति विचार–विमर्श होने लगा और साठोत्तरी मराठी साहित्य में यह दलित आंदोलन के रूप में उभरा है।

डॉ.बी.आर.अंबेडकर के महापरिनिर्वाण के पश्चात् दलित समाज विभाजित हुआ और दलित पर पहले से ज्यादा अत्याचार होने लगे स्वयं रक्षा हेतु दलित युवकों ने अपना संगठन तीव्र किया और साहित्यकारों ने विषम व्यवस्था के प्रति आक्रोश प्रकट किया हैं। अर्जुन डांगळे ने इस संदर्भ में कहा है,''दलित जीवन के हिस्से में मिले दाहक अनुभव, सामाजिक विषमता के विरोध में विद्रोह, हमारा जीवन अलग, हमारा साहित्य अलग। इस प्रकार के नानाविध विषयों को लेकर साहित्य रचनाऍ लिखी। कथा, कविताऍ बडे पैमाने पर लिखी गईं। समग्रत: इस कालखंड में दलित साहित्यधारा को आंदोलन का स्वरूप प्राप्त हो चुका था ।''[९] अर्थात् दलित साहित्य आंदोलनों से ही उभरा है । इसलिए इसमें व्यक्त 'विद्रोह' मौलिक स्त्रोत है।

५. अंबेडकरी प्रेरणा का साहित्य–

दलित साहित्य ने न केवल भारतीय साहित्यकारों को आकृष्ट किया है बल्कि विदेशी साहित्यकारों को भी आकर्षित किया है। इसकी प्रमुख वजह यह है कि महामानव डॉ.बी.आर.अंबेडकर ने दलितों की कैफियत को गॉव सीमा से होकर दिल्ली तक तथा लंदन–गोलमेज परिषदों तक पहुॅचाई। उनका समाज तथा देशविकास के प्रति का समर्पण भाव का असर दलित साहित्यकारों पर होना सहज स्वाभाविक था। अत: यह साहित्य अंबेडकरी प्रेरणा का साहित्य प्रतीत होता है। ''बाबासाहेब के कार्यकाल को दलित आंदोलन के इतिहास में प्रबोधन–पर्व कहा जाएगा। इस प्रबोधन के पर्व में प्रमुख लेखक के रूप में बंधुमाधव, शंकरराव खरात और अण्णाभाऊ साठे का जिक्र किया जा सकता है। इसी काल में दलित लेखक ना.रा.शेंडे का लेखन भी प्रकाशित हो रहा था।''[१०] अर्थात् अंबेडकरी प्रेरणा एवं चेतना ही इस काव्य का मौलिक स्त्रोत है।

६. क्रांति का उद्घोष–

क्रांति प्रकृतिजन्म अवधारणा है। प्रकृति परिवर्तनशील है। इसलिए परिवर्तन होना सृष्टि का नियम हो गया है। प्रकृति के अनुसार मनुष्य के जीवन में भी बदल होने की संभावना होती है। इसलिए कहा जाता है कि प्रकृति एवं भाषा परिवर्तनशील है। दलितों ने भी परिवर्तनशील समय का स्वागत करने हेतु बुद्धि प्रामाण्यवाद का अनुसरण किया है। दलित साहित्य में समूचे भारतीय समाजव्यवस्था को बदलने की क्षमता निहित है क्योंकि दलित साहित्य क्रांति से पल्लवित हुआ दलितों की स्वानुभूति का दस्तावेज है।

यह साहित्य हजारों साल की जातिवादी प्रवृत्ति को तबाह करने हेतु क्रांति का बिगुल बजाता है जिसमें ज्ञान, विज्ञान, तर्क, स्वनिर्णय, स्वातंत्र्य, एकता, बंधुता का भाव मानवता के परिप्रेक्ष्य में लिखा जा रहा है। इसमें भाषिक, प्रांतीय, राष्ट्रीय दुराग्रह नहीं है। बल्कि क्रांति का नारा है।

७. सामाजिक प्रतिबद्धता का साहित्य—

दलित साहित्य में सामाजिक प्रतिबद्धता स्पष्ट नजर आती है। दलित साहित्यकारों ने दलितों में विवेक जगाने का कार्य किया है और उन्होंने सामाजिक यथार्थ को मुखरित भी किया है। व्यक्ति ने समष्टि के खातिर त्याग करना चाहिए। यहि कारण है कि बहुत कम मूल्य में अंबेडकरी जलसा, दलित नाटक रंगमंचपर प्रस्तुत किए गए। जानपर खेलकर दलित साहित्यकारों ने अपनी सामाजिक प्रतिबद्धता निभाई है। परिवर्तन की चाहत में दलित साहित्य का सृजन हुआ है। मानवी मूल्यों की पक्षधरता के प्रति दलित साहित्यकार सजग है। कामयाबी की मंजिल की दिशा और दशा आदि के बारे में दलित साहित्य पाठक को उचित निर्देश दे रहा है, यही सामाजिक प्रतिबद्धता है जिसका निर्वाह दलित साहित्य में ध्यानपूर्वक हुआ हैं। दलित साहित्य में जातिवादी की सोच धीरे धीरे जडें जमा रही है। इसके प्रति सतर्कता भी बरती जा रही है और बुराई से बचने की सलाह भी दी है। दलितों पर सांप्रदायिकता एवं जातिवाद की बडी समस्या है। इससे नयी पीढी को बचाने के प्रयास में 'सलाम' नामक कथा का अंतिम दृश्य इस दृष्टि से देखने योग्य है। इसतरह की कई विधाएँ सामाजिक प्रतिबद्धता दर्शाने में सक्षम हैं।

८. मनुष्य का गान—

दलित साहित्य की नींव 'सत्य' है जो नित्य मानवता का ही निर्वाह करता है। इसमें हारे हुए मनुष्य को नायक करके उसकी वेदना को समूची समाज की वेदना में प्रस्तुत किया है। उसके आत्मसम्मान को जगाया है। 'दलित साहित्य का शिल्प सौंदर्य' शीर्षक निबंध में डॉ.चंद्रभान सिंह यादव ने यह कहा है,''दलित साहित्य मूलत: मानवीय साहित्य है जिसके केंद्र में मनुष्य का दु:ख, दर्द है न कि मांसल प्रेमसौंदर्य और प्रकृति का मानवीकरण/यहॉ मानवीय दु:ख, दर्द के व्यापक संदर्भ है। श्रमिक के दर्द के साथ मालिक के दु:ख को समझने वाले रचनाकार भी है।''[११] यही कारण है कि बाबुराव बागूल ने मानव की आजादी को सर्वाधिक महत्व दिया है। उसे ईश्वर से भी बढकर माना है। सारिका के संपादक कमलेश्वर ने संपादकीय में कहा है,''बार—बार शपथ खाकर हम आदमी नहीं बन पाए। आदमी बिना ज्ञान, बिना साहित्य को आत्मसात किए बिना नहीं बना जा सकता। दलित साहित्य आदमी के निर्माण का साहित्य है।''[१२]

९. जातिविहीन समाजरचना की कामना—

भारतवर्ष में वर्ण, जाति, धर्म, प्रदेश, भाषाएँ इतनी हैं कि उनमें समता स्थापित कैसी करें? इस सवाल के जवाब में उभरा संविधान और उसके मूल्य स्थापन में डॉ.बी.आर.अंबेडकर की सतर्कता, गहन अध्ययन, समीक्षा एवं संशोधन वृत्ति अनुपम रही है। अल्पसंख्याक समाज ने कभी जाति के नाम तो कभी सांप्रदायिकता या धर्म के जरिए अपना रूतबा कायम करने हेतु वर्णव्यवस्था को अत्यधिक महत्व दिया है। इसलिए हर एक जाति कई उपजातियों में विभक्त हुई और हर जाति दूसरे से पृथक मानकर श्रेष्ठता का डिंग हॉककर राष्ट्रीय एकता भाव में अडसर पैदा कर रही है। जातिव्यवस्था की बुनियाद झूठी,गलत साबित करने हेतु डॉ.बी.आर.अंबेडकर ने यह कहा है,''हिंदू समाज एक मिनार है और एक एक जाति याने उसका एक एक माला ही है परंतु ध्यान में लेने योग्य बात यह है कि इस मिनार को सीढी नहीं। लिहाजा एक माले से दूसरे माले पर जाने के लिए रास्ता नहीं है जिस माले में जन्म पाया है, उसी माले में मरना है। नीचे माले का व्यक्ति कितनी भी योग्यताओं का हो, उसे उपरि मंजिल में प्रवेश नहीं और उपरि माले का व्यक्ति फिर वह कितना ही बुरा, अयोग्य हो, उसे नीचे की माले में प्रवेश देने की अनुमति नहीं ।''[१३] जन्म पर आधारित जाति व्यवस्था को नकार देने हेतु दलित साहित्य जाति व्यवस्था का विरोध करके जीवन में आत्मसम्मान को पाने के लिए आत्मनिर्भर, बुद्धिप्रामाण्यवाद या वैज्ञानिकता को अपनाने की प्रेरणा देता है। स्पष्ट है कि इसमें जातिविहीन समाज रचना की तीव्र कामना है।

निष्कर्ष—

दलित साहित्य दलितों में स्वत्व, अस्मिता जगाने के प्रयास में लिखा गया है। उसमें जन्माधारित वर्ण व्यवस्था, बेरोजगारी की वेदना, गैर दलितों की अवसरवादिता, दलित तथा दलित नारियों का आक्रोश आदि की भाषा तथा शैली कही भी बनावटी चमक—दमक की नहीं है। बावजूद इसके कि यह भाषा बनावटी चमक—दमक के दबाव से बिल्कुल मुक्त है। दलित साहित्य की भाषा अत्यधिक सरल—सहज, बोधगम्य एवं विश्वसनीय है। वैसे वेदनानुभूति में ही सुंदर फूल खिलता है तथा सुंदर वस्तु विकसित होती है जो हर वेदना—पीडा—दर्द देनेवाली व्यवस्था के विरोध में अंबेडकरी अमर विचार का स्मरण देने में सक्षम है। स्मरण देने का प्रयोजन यह है कि पाठक स्वयं को कभी प्रस्थापित न समझे क्योंकि यह साहित्य विखंडनवाद, अहंकार को मिटाने हेतु जन्मा है। इसलिए इसमें मनुष्य गान, विज्ञाननिष्ठा, जातिविरहित समाज रचना तथा प्रामाणिकता की पुकार हैं। इसकी बुनियाद अंबेडकरी आंदोलन ही है जो दलित तथा सवर्ण की मानसिकता को नियंत्रित कर रहा है। यही कारण है कि आजकल यह साहित्य बहुचर्चित रहा है। उसके प्रभाव में मौलिकता निहित है। यह साहित्य पाठक को सामाजिक प्रबिद्धता की सीख देता है तथा उन्हें मानवता की रक्षा हेतु कृतिशील होने एवं संशोधन में विश्वास रखने की प्रेरणा देता हैं।

संदर्भ ग्रंथ :

1. डॉ.भालचंद्र फडके, ‘दलित साहित्य वेदना आणि विद्रोह’, पृष्ठ १०.
2. वही, पृष्ठ २८.
3. डॉ.हणमंतराव पाटील, ‘दलित साहित्य और वैश्विकता’, पृष्ठ ५३.
4. डॉ.रश्मि चतुर्वेदी, ‘साक्षात्कार : दलित विमर्श के आलोक मे’, पृष्ठ ५३.
5. शंकरराव खरात ‘तराल—अंतराल’, पृष्ठ १४.
6. ‘कंवल भारती’ ‘दलित विमर्श की भूमिका’, अमन प्रकाशन, कानपुर, पृष्ठ १२५.
7. मुकेश सिंह, डॉ.भीमराव अंबेडकर, पृष्ठ १५४.
8. डॉ.जोगिंद्रकुमार संधू ‘दलित चेतना के संदर्भ में कथाकार ओमप्रकाश वाल्मीकि,पृष्ठ २९.
9. डॉ.मारूती शिंदे, ‘दलित साहित्य और प्रेमचंद’, दिव्य डिस्ट्रीब्युटर्स, कानपूर, पृष्ठ ३२.
10. शरणकुमार लिंबाले,‘दलित साहित्य का सौंदर्यशास्त्र’,(अनुवादक—रमणिका गुप्ता),पृष्ठ ३८.
11. रवींद्र कालिया (संपादक),‘वर्तमान साहित्य’,अंक ४,अप्रैल २००५, पृष्ठ ७७.
12. आशुतोष पेडणेकर, (संपादक), ‘मधुमती’ अंक जून २०१४, पृष्ठ ३२.
13. शंकरराव खरात (संपादक),डॉ.बाबासाहेब आंबेडकर यांची आत्मकथा, पृष्ठ ३५.